इकाई 9 प्रेमाश्रमयुगीन भारतीय समाज और प्रेमचंद का आदर्शवाद

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 प्रेमचंद की उपन्यास-दृष्टि : आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

9.3 प्रेमाश्रम में तत्कालीन समाज की तस्वीर

9.3.1 जमींदार

9.3.2 किसान

9.3.3 मध्यवर्ग

9.4 कथाकार का आदर्शवाद

9.5 सारांश

9.6 अभ्यास प्रश्न

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई पढ़ने के बाद आप :

- आदर्शवाद और आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के बारे में सैद्धांतिक स्तर पर प्रेमचंद की समझ का विवेचन कर सकेंगे;
- प्रेमाश्रम में अपने समय के समाज का यथार्थ-चित्रण किस रूप में हुआ है, इसकी व्याख्या कर सकेंगे;
- कथानक-विकास एवं चरित्र-विकास की प्रक्रिया में किस तरह प्रेमचंद का आदर्शवाद इस यथार्थ-चित्रण पर हावी हो जाता है, का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- प्रेमचंद का आदर्शवाद कहाँ तक युग-चेतना की अभिव्यक्ति है, इसकी चर्चा कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

यह सुविदित तथ्य है कि प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को स्थूल मनोरंजन एवं स्थूल उपदेशात्मकता से ऊपर उठाकर युगजीवन का साक्षात्कार कराने वाली विधा के रूप में स्थापित किया। उनके आविर्भाव से पहले हिंदी में या तो पाठकों की कौतूहल-वृत्ति को जगाकर उसे संतुष्ट करने वाले मनोरंजनप्रधान उपन्यास थे या फिर ऐसे उपदेशप्रधान सामाजिक उपन्यास, जो वर्णनीय समस्या की जटिलताओं में उतरे बिना सीधे-सीधे पाठकों को उपदेश देने का काम करते थे। प्रेमचंद ने पहली बार अपने समय के समाज को उसकी तमाम विविधताओं, जटिलताओं और बदलावों के साथ उपन्यास का विषय बनाया। उन्होंने इस विधा के मूल स्वरूप की पहचान की और पश्चिम में जिस यथार्थवाद के साथ उपन्यास विधा का जन्म हुआ था, उसे अपनाते हुए युग-जीवन के अविस्मरणीय चित्र खींचे। पिछली इकाई में हमने देखा कि किस प्रकार उन्होंने प्रेमाश्रम में अपने युग की कृषि-समस्या को उसकी समग्रता में प्रस्तुत किया है। उनके सभी उपन्यास इसी प्रकार युग-जीवन के किसी-न-किसी पहलू को गहरी अंतर्दृष्टि के साथ चित्रित करते हैं। लेकिन इस यथार्थवाद को प्रेमचंद ने अपनी शर्तों पर स्वीकारा है। वे वस्तुस्थितियों की तहकीकात करके ही संतुष्ट नहीं होते,

कथा के धरातल पर उसकी विसंगतियों का समाधान भी करना चाहते हैं और अक्सर यह समाधान आरोपित सदिच्छा की शक्ल में दिखलाई पड़ता है। इसप्रकार उनके कथा-विधान में घटनाओं की परिणति यथार्थवादी नहीं रह जाती। प्रेमाश्रम के संदर्भ में उनकी इस प्रवृत्ति की थोड़ी-बहुत छानबीन पिछली इकाई में की गई थी। इस इकाई में हम अपेक्षाकृत विस्तार के साथ यह देखने का प्रयास करेंगे कि युगीन यथार्थ को उन्होंने कितनी कुशलता से औपन्यासिक कथा में बाँधने का प्रयास किया है और कहाँ-कहाँ उस यथार्थ का अतिक्रमण करते हुए चरित्रों और परिस्थितियों को आदर्शवाद के हवाले कर दिया है। यथार्थ से आदर्श की दिशा में कथा का बहाव अनजाने-अनचाहे नहीं हुआ है। यह प्रेमचंद की अपनी सैद्धांतिक मान्यताओं के अनुरूप है, जिसे वे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का नाम देते हैं। इसलिए सबसे पहले हम इस सैद्धांतिक मान्यता पर विचार करेंगे।

9.2 प्रेमचंद की उपन्यास-दृष्टि : आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

अपने 'उपन्यास' शीर्षक निबंध में तथा अन्यत्र भी प्रेमचंद ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की चर्चा की है। उनकी मान्यता है कि "वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं, जहाँ यथार्थ और आदर्श का समन्वय हो गया हो। उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने ही के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है।" इस तरह आदर्श और यथार्थ का ऐसा समन्वय, उनके अनुसार, अच्छे उपन्यास की विशेषता है, जिसका मुख्य उद्देश्य तो किसी आदर्श को स्थापित करना होता है, लेकिन उस स्थापना को स्वाभाविक और आश्वस्तिदायक बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग आवश्यक होता है। जिस यथार्थवाद में यह आदर्शोन्मुखता नहीं होती, वह प्रेमचंद को स्वीकार्य नहीं है। ऐसा यथार्थवाद, उन्हीं के शब्दों में, "हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है। और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव-चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है।" इसके विपरीत "आदर्शवाद हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है, जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ और वासना से रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते हैं। ... रियलिज्म हमारी आँखें खोल देता है, तो आइडियलिज्म हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। . . . उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि करना है, जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर लें।"

उद्धृत अंशों से एक बात स्पष्ट है कि आदर्शवाद और यथार्थवाद, दोनों के विषय में प्रेमचंद की समझ साफ न थी। यथार्थवाद के नाम पर वे जिन प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हैं, वे वस्तुतः प्रकृतवाद (नेचुरलिज्म) की प्रवृत्तियाँ हैं। इसी तरह उन्होंने आदर्शवाद के जो लक्षण गिनाए हैं, उन्हें बड़ी सहजता से यथार्थवाद में अंतर्भुक्त किया जा सकता है। सैद्धांतिक स्तर की इस भ्रांति के बावजूद यह सच है कि प्रेमचंद के उपन्यासों में कथा का विकास जिस 'स्कीम' के तहत होता है, उसे - आदर्श और यथार्थ, इन दोनों पदों के वास्तविक अर्थों का ध्यान रखते हुए भी - आदर्शोन्मुख यथार्थवाद ही कहा जा सकता है। यथार्थवाद भावजगत को वस्तुजगत की सापेक्षता में देखनेवाली पद्धति है। यह पद्धति वस्तुस्थितियों का तटस्थ वैज्ञानिक विश्लेषण करने का प्रयास करती है और मानव-मन को उन स्थितियों के घात-प्रतिघातों के बीच ही चित्रित करती है। आदर्शवाद प्रत्यय (आइडिया) की स्वतंत्र सत्ता को मानता है। इसलिए मानव-मन को वहाँ एक तरह की स्वायत्ता मिल जाती है। मन की इस स्वायत्त सत्ता में वस्तुगत परिस्थितियों से निरपेक्ष आदर्श उत्पन्न और विकसित हो सकते हैं। इसलिए आदर्शवादी कथा-योजना में परिस्थितियों को, उनके अपने अंतर्निहित तर्कों से परे, मनचाहे तरीके से मोड़ा जा सकता है। इसी अर्थ में हृदय-परिवर्तन एक आदर्शवादी कथा-युक्ति है। इस युक्ति का इस्तेमाल करते हुए और परिस्थितियों के अपने तर्क की अनदेखी करते हुए आदर्शवादी कथाकार अपनी कथा को वांछित परिणति की ओर मोड़ देता है। वस्तुजगत की गति चूंकि ऐसी सदिच्छाओं के अनुरूप नहीं होती, इसलिए आदर्शवादी ढर्रे की कथा का संसार वास्तविक संसार के सामने अविश्वसनीय प्रतीत होता है।

यथार्थवाद और आदर्शवाद के इन आशयों का ध्यान रखते हुए प्रेमचंद के कथा-साहित्य को देखें, तो पाएँगे कि उसका अधिकांश आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के दायरे में ही आता है। प्रेमाश्रम भी इसका अपवाद नहीं है। प्रेमाश्रम की कथा अपने समय के भारतीय समाज के कई तबकों और अनेक प्रवृत्तियों को औपन्यासिक घटनाओं तथा प्रतिनिधि पात्रों की मदद से हमारे सामने मूर्त कर देती है, लेकिन उनका यथार्थवादी आकलन करते हुए भी कथाकार का आदर्शवादी मिजाज अंततः हावी हो जाता है और वह 'जो है' के परिस्थितिजन्य बंधन को तोड़कर 'जो होना चाहिए' की परिस्थिति-निरपेक्ष स्वतंत्रता में छलांग लगा देता है।

9.3 प्रेमाश्रम में तत्कालीन समाज की तस्वीर

पिछली इकाई में यह बतलाया जा चुका है कि तत्कालीन कृषक-समाज की समस्याओं का कैसा यथार्थवादी चित्रण प्रेमाश्रम में हुआ है। इस संदर्भ में कृषि-समस्या के मूल कारण के रूप में जमींदारी व्यवस्था और उसके संबद्ध पहलुओं का भी नातिदीर्घ परिचय दिया गया था। वह पूरा विवरण प्रस्तुत इकाई के लिए भी उपयोगी है। दुहराव से बचते हुए यहाँ कुछ अन्य पहलुओं पर प्रकाश डालना उचित होगा। आप से यह अपेक्षा की जाती है कि आप पिछली इकाई में प्रस्तुत किये गये तथ्यों को इस विवेचन के साथ जोड़कर देखेंगे।

प्रेमाश्रम में तत्कालीन समाज के तीन वर्गों की जीवंत तस्वीर उभरती है। ये हैं - जमींदार, किसान और मध्यमवर्ग। इनमें से जमींदार और जमींदारी का खाका खींचने में उपन्यास के सर्वाधिक पृष्ठ काम आए हैं। किसान-जीवन का चित्रण अपेक्षाकृत कम पृष्ठों में, किंतु उतना ही गहन है। मध्यमवर्ग से संबंधित अंश सबसे कम हैं और वे उस वर्ग के परिचय की दृष्टि से पर्याप्त नहीं कहे जा सकते, फिर भी कथाकार के अत्यंत महत्वपूर्ण अवलोकनों को वहाँ स्थान मिला है।

9.3.1 जमींदार

डॉ. वीरभारत तलवार ने लिखा है -

> "प्रेमाश्रम में किसानों से अधिक जमींदारों की कहानियाँ हैं। लेनिन ने टॉलस्टॉय के बारे में लिखा था कि उनका साहित्य पढ़कर रूस का मेहनतकश वर्ग अपने वर्ग-शत्रुओं को और भी अच्छी तरह पहचान सकेगा। यह बात प्रेमचंद के बारे में भी कही जा सकती है।"

ज्ञानशंकर, गायत्री देवी, राय कमलानंद और प्रभाशंकर-जैसे चरित्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने तत्कालीन जमींदार वर्ग की बहुत मुकम्मिल तस्वीर पेश की है, इस बात में दो राय नहीं हो सकती। प्रभाशंकर और ज्ञानशंकर को आमने-सामने रखकर उन्होंने किस प्रकार पुराने जमींदार और नये जमींदार के फर्क को रेखांकित किया है और कैसे इस फर्क को अंग्रेजी राज में उभरती नयी परिस्थितियों से जोड़कर दिखलाया है, यह हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं। हमने यह भी देखा है कि एक दलाल तबके के रूप में अपनी शोषक सत्ता को बरकरार रखने और अपनी आमदनी को लगातार बढ़ाते रहने के लिए यह वर्ग कैसे अमानवीय उपायों का सहारा लेता रहा है। वस्तुतः इस वर्ग को इसकी तमाम नीचताओं के साथ प्रेमचंद ने पहचाना और चित्रित किया है। पर साथ ही उन्होंने इन नीचताओं के वस्तुगत कारणों की भी शिनाख्त की है। अंग्रेजी राज द्वारा प्रदत्त अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण निठल्ली अय्याशियों को भोगने का जो अभ्यास यह वर्ग अपने अंदर विकसित कर चुका था, उसके बीच इन नीचताओं का पनपना स्वाभाविक था। राय कमलानंद विष दिये जाने के बाद ज्ञानशंकर से जो बातें कहते हैं, उसका एक महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार है -

> "इसे रियासत कहना भूल है, यह निरी दलाली है। . . . तुम कहोगे, रियासत इतनी बुरी चीज है, तो इसे छोड़ क्यों नहीं देते? हाँ, यही तो रोना है कि इस रियासत ने हमें विलासी, आलसी और अपाहिज बना दिया, हम किसी काम के नहीं रहे। हम पालतू चिड़ियाँ हैं, हमारे पंख शक्तिहीन हो गये हैं। हममें अब उड़ने की सामर्थ्य नहीं

है। हमारी दृष्टि सदैव अपने पिंजरे के कुल्हिये और प्याली पर रहती है, हमने अपनी स्वाधीनता को मीठे टुकड़ों पर बेच दिया है।"

राय कमलानंद की इस स्वीकारोक्ति के माध्यम से प्रेमचंद यह साफ दिखलाते हैं कि अंग्रेजों ने निठल्ले दलालों के इस तबके को अय्याशियों की जो आदत डाल दी है, वह इन्हें किसी भी हद तक पतन का शिकार बना सकती है। पूरे उपन्यास में यह वर्ग अंग्रजों का जबर्दस्त हितैषी और किसानों के प्रति तथा उस कृषि-कार्य के प्रति, जो उसकी आमदनी का प्रमुख आधार है, पूर्णतया उपेक्षाशील दिखलाया गया है। प्रेमशंकर को जिस ताल्लुकेदार एसोसिएशन के अधिवेशन में अपना पर्चा पढ़ने के लिए आमंत्रित किया जाता है, उसकी स्थिति का कच्चा चिट्ठा पेश करके कथाकार ने तत्कालीन भारत में इस वर्ग की भूमिका को बड़ी कुशलता से स्पष्ट किया है। प्रेमशंकर के यह पूछने पर कि 'ऐसी संस्थाओं से देश का क्या उपकार होगा?', राय कमलानंद कहते हैं -

"उपकार क्यों नहीं होगा? क्या आपके विचार में जाति का नेतृत्व निरर्थक वस्तु है? आजकल तो यही उपाधियों का सदर दरवाजा हो रहा है। सरल भक्तों का श्रद्धास्पद बनना क्या कोई मामूली बात है? बेचारे जाति के नाम पर मरने वाले सीधे-सादे लोग दूर-दूर से हमारे दर्शनों को आते हैं, हमारी गाड़ियाँ खींचते हैं, हमारी पदरज को माथे पर चढ़ाते हैं। क्या यह कोई छोटी बात है? और फिर हममें कितने ही जाति के सेवक ऐसे हैं जो सारा हिसाब मन में रखते हैं, उनसे हिसाब पूछिए तो वह अपनी तौहीन समझेंगे और इस्तीफे की धमकी देंगे। इसी संस्था के सहायक मंत्री की वकालत बिल्कुल नहीं चलती; पर अभी उन्होंने बीस हजार का एक बंगला मोल लिया है। जाति से ऐसे भी लेना है, वैसे भी लेना है, चाहे इस बहाने से लीजिए, चाहे उस बहाने से लीजिए !"

इसी मौके पर कृषि की उन्नति के संबंध में प्रेमशंकर के विचारों पर टिप्पणी करते हुए राजा इन्द्रकुमार सिंह साफ कहते हैं -

"आपके बनाए हुए यंत्र कोई सेंत में भी न लेगा। आपकी रासायनिक खादें पड़ी सड़ेंगी। बहुत हुआ तो आप पांच-सात सैंकड़े मुनाफा दे देंगे। इससे क्या होता है? जब हम दो-चार कुएं खोदवाकर, पटवारी से मिलकर कर्मचारियों का सत्कार करके आसानी से आमदनी बढ़ा सकते हैं, तो यह झंझट कौन करे?"

ये अंश जमींदार वर्ग की काहिली और नकारेपन का ही नहीं, उसके अमानवीय रवैये का भी सफल निदर्शन हैं। यह वर्ग ऐसा है, जिसके दिलो-दिमाग में किसी सार्थक, समाजोपयोगी काम को अंजाम देने की सदिच्छा शेष नहीं है। अपने ऊपर बैठे अंग्रेज हुक्काम और सरकारी अफसरान को खुश रखकर तथा अपने पैरों के नीचे दबी किसान जनता को और कुचलकर यह वर्ग स्वार्थ-साधन में मग्न रहता है। इसीलिए अधिवेशन में प्रेमशंकर को पर्चा पढ़ने के लिए आमंत्रित करने के बावजूद ये लोग प्रेमशंकर के विचारों में किसी तरह की दिलचस्पी नहीं दिखलाते और जब उन्हें यह अहसास हो जाता है कि यह व्यक्ति स्वराज्यवादी है, तो उनका रवैया और भी उपेक्षापूर्ण हो जाता है। "इस कारण से किसी ने उनसे निबंध पढ़ने के लिए आग्रह नहीं किया, यहाँ तक कि गार्डन पार्टी ने उन्हें निमंत्रण भी न दिया। यह रहस्य लोगों पर उनके आने के एक दिन पीछे खुला था; नहीं तो कदाचित् उनके पास लेख पढ़ने का आदेश-पत्र भी नहीं भेजा जाता।"

जमींदारों-ताल्लुकेदारों के अमानवीय अत्याचारों और छल-प्रपंचों का खुलासा उपन्यास में आद्यन्त दिखलायी पड़ता है। तत्कालीन भारत के इस कठोर यथार्थ को चित्रित करने में प्रेमचंद ने कोई चूक नहीं की है। यहाँ ज्ञानशंकर-जैसे प्रकट खलपात्र को ही नहीं, गायत्री देवी-जैसी सदाशयी महिला को भी असामियों के घरों में आग लगवाते और उन्हें मुश्कें बाँध कर पिटवाते देखा जा सकता है। कथाकार ने इस वर्ग के बौद्धिक और आध्यात्मिक दिखावों की भी पहचान करायी है। ज्ञानशंकर का ऊर्जस्वी लेखन, राय कमलानंद का योग-प्रेम, ज्ञानशंकर और गायत्री देवी की आडंबरपूर्ण कृष्ण-भक्ति, गायत्री देवी की प्रचारप्रिय दानशीलता - इन सबके माध्यम से इस वर्ग के दो मुंहे चरित्र को उसने बेनकाब किया है।

9.3.2 किसान

1918 में, जब प्रेमचंद इस उपन्यास की रचना-परिकल्पना में जुटे होंगे, उन्होंने 'स्वदेश' के प्रवेशांक में किसान-हितों की जोरदार हिमायत करते हुए लिखा था -

> "हमारे कृषक अब भी नीच समझे जाते हैं। उनसे अब भी बेगार ली जाती है। उन पर नाना प्रकार के अत्याचार किये जाते हैं। स्वार्थान्ध जमींदारगण उन्हें सताने और कुचलने में अब भी संकोच नहीं करते। हमारे ऊपर मूर्खता का वही पुराना साम्राज्य है। हमारी जनता (कृषक वर्ग) जो प्रधानतः देहातों में रहती है, उसे जगाना, उसे अपनाना, उसकी उपेक्षा न करके उसके प्रति प्रेम और संवेदना के भाव प्रकट करना प्रत्येक स्वदेशाभिमानी का प्रधान कर्तव्य है।"

प्रेमाश्रम की रचना कर प्रेमचंद ने एक तरह से इसी कर्तव्य का निर्वाह किया था। पूरे उपन्यास में किसानों की दुरवस्था और उस दुरवस्था के कारणों का अत्यंत संवेदनशील अंकन हुआ है। प्रारंभ के पृष्ठों में ही 20 बीघे का काश्तकार मनोहर अपने घर की दुर्दशा की सूचना देता हुआ कहता है - "घर में कुछ पूंजी भी तो हो ! अभी रब्बी में महीने की देर है और घर में अनाज का दाना नहीं है। गुड़ एक सौ रुपये से कुछ ऊपर ही हुआ है, लेकिन बैल बैठाऊ हो गया है। 150 रुपये लगेंगे, तब कहीं एक बैल आवेगा।" दुखरन भगत का रोना है - "पाँच बीघे रब्बी बोयी थी, लेकिन 10 मन की भी आशा नहीं है, और गुड़ का तुम जानते ही हो जो हाल हुआ। कोल्हाड़े से ही बिसेसर शाह ने तोल लिया। बाल-बच्चों के लिए शीरा तक न बचा। देखें भगवान कैसे पार लगाते हैं !"

खेती पर निर्भर इस पूरे समुदाय की ऐसी गरीबी के चित्र उपन्यास में जगह-जगह अंकित हैं। सबसे सघन ब्यौरा उस प्रसंग में आता है, जहाँ भावी जमींदार मायाशंकर अपने इलाके का दौरा करते हैं। मायाशंकर का अनुभव इस प्रकार है -

> "चारों तरफ तबाही छायी हुई थी। ऐसा बिरला ही कोई घर था, जिसमें धातु के बर्तन दिखायी देते हों। कितने घरों में लोहे के तवे तक न थे। मिट्टी के बर्तनों को छोड़कर झोपड़े में और कुछ न दिखायी देता था। न ओढ़ना, न बिछौना, यहाँ तक कि बहुत-से घरों में खाटें तक न थीं और वह घर ही क्या थे? एक-एक, दो-दो छोटी कोठरियाँ थीं। एक मनुष्यों के लिए, एक पशुओं के लिए। उसी एक कोठरी में खाना, सोना, उठना-बैठना सब कुछ होता था। बस्तियाँ इतनी घनी थीं कि गाँव में खुली हुई जगह दिखायी ही नहीं देती थी। किसी के द्वार पर सहन नहीं, हवा और प्रकाश का शहरों की घनी बस्तियों में भी इतना अभाव न होगा। जो किसान बहुत संपन्न समझे जाते थे, उनके बदन पर साबित कपड़े न थे, उन्हें भी एक जून चबेना पर ही काटना पड़ता था। वह भी ऋण के बोझ से दबे हुए थे। अच्छे जानवरों को देखने को आँखें तरस जाती थीं। जहाँ देखो छोटे-छोटे मरियल, दुर्बल बैल दिखायी देते थे और खेतों में रेंगते और चरनियों पर औंघते थे। कितने ही ऐसे गाँव थे, जहाँ दूध तक न मयस्सर होता था।"

प्रेमचंद इस स्थिति के कारणों को भी पूरे विस्तार के साथ चित्रित करते हैं। वस्तुतः पूरा उपन्यास एक तरह से इन्हीं कारणों का खुलासा है। हमने पिछली इकाई में घटती हुई उत्पादकता, लगान-वृद्धि, बेगार, नजराना और सरकारी अधिकारियों को पहुँचाई जानेवाली रसद इत्यादि पर विचार किया था और इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि प्रेमचंद जमींदारी प्रथा तथा औपनिवेशिक शासन-तंत्र के शैतानी गठबंधन को शोषण के इन सभी रूपों के लिए आखिरी तौर पर जवाबदेह मानते हैं। जिस बात की चर्चा पिछली इकाई में नहीं हो पायी थी, वह है किसानों का प्रतिरोध। उस दौर का भारतीय किसान शोषण का बिल्कुल मूक शिकार नहीं रह गया था। किसान-प्रतिरोध की घटनाएँ जगह-जगह दिखलाई पड़ने लगी थीं और उनका सबसे बड़ा उभार - अवध का किसान-आंदोलन - प्रेमाश्रम के रचनाकाल में फूट पड़ने को तैयार था। प्रेमचंद ने किसान तबके के इस यथार्थ को पहचानने में चूक नहीं की है। रामविलास शर्मा ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि "प्रेमचंद की कला इस बात में है कि वे हिंदुस्तान के बदलते हुए किसान का चित्र खींच सके हैं। . . . पहाड़ की तस्वीर खींचना

आसान है, नदी के बहाव को चित्रित करना मुश्किल। प्रेमचंद ने यथार्थ के बहाव को पकड़ लिया है।" प्रेमाश्रम में आंदोलन की स्थिति भले ही निर्मित न हुई हो, प्रतिरोध का वातावरण स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। उपन्यास के पहले ही प्रसंग में मनोहर जमींदार के आदमी को बेगार में घी देने से मना कर देता है। गिरधर के यह कहने पर कि "जब जमींदार की जमीन जोतते हो तो उसके हुकुम के बाहर नहीं जा सकते", वह दो-टूक जवाब देता है - "जमीन कोई खैरात जोतते हैं? उसका लगान देते हैं। एक किस्त भी बाकी पड़ जाय तो नालिस होती है। . . . यहाँ कोई दबैल नहीं हैं। जब कौड़ी-कौड़ी चुकाते हैं तो धौंस क्यों सहें?" आगे जमींदार और उसके कारिंदों के अत्याचारों के जिस भीषण दौर से लखनपुर गाँव गुजरता है, उसका आंशिक संबंध इस घटना से भी है। इस घटना को बहाना बना कर ज्ञानशंकर अपने चाचा प्रभाशंकर पर किसानों को सर चढ़ाने का आरोप लगाता है और जमींदारी की जवाबदेही अपने ऊपर ले लेता है। इसके बाद लगान-वसूली में किस तरह की सख्तियाँ बरती जाती हैं, कारिंदों को खुल कर खेलने की कैसी छूट मिलती है - इन सबका चित्रण उपन्यास में जगह–जगह मिलता है। कारिंदों की ऐसी सख्तियों का जवाब किसान भी देते हैं। लगान-वृद्धि के खिलाफ वे मजिस्ट्रेट की अदालत से लेकर हाइकोर्ट तक मुकदमा लड़ते हैं और उन्हें सफलता मिलती है। तालाब और चारावर पर जमींदार के रोक लगाने के खिलाफ भी वे संघर्ष करते हैं। चारावर पर रोक के सिलसिले में ही कारिंदा गौस खां से मनोहर की पत्नी बिलासी का झगड़ा हो जाता है और मनोहर पत्नी के अपमान का बदला गौस खां की हत्या करके लेता है। इस हत्या के आरोप में पूरा गाँव बँध जाता है। अंततः कई लोगों को लंबी-लंबी सजाएँ मिलती हैं।

यहाँ मंशा प्रेमाश्रम की पूरी कहानी दोहराने की नहीं है। घटनाओं का हवाला सिर्फ यह बतलाने के लिए दिया जा रहा है कि किसानों के दुख-दारिद्र्य और बेचारगी की ही नहीं, उनके संघर्ष की भी यथार्थवादी तस्वीर प्रेमाश्रम में दिखलाई गई है और ऐसा करके कथाकार ने तत्कालीन कृषक समाज को समग्रता में रखने का प्रयास किया है। यह तस्वीर यथार्थवादी मात्र इस अर्थ में नहीं है कि उस युग में किसान-प्रतिरोध की घटनाएँ सामने आ रही थीं, इस अर्थ में भी है कि किसानों के इस संघर्ष को प्रेमचंद ने वस्तुगत आधारों से जोड़कर दिखलाया है। मनोहर और बलराज-जैसे किसानों की संघर्ष-चेतना के कुछ स्पष्ट आधार उपन्यास में मौजूद हैं, जिनकी ओर डॉ. वीरभारत तलवार ने संकेत किया है। उनके द्वारा संकेतित पांच आधारों में से कम-से-कम तीन अवश्य उल्लेखनीय हैं। इस संघर्ष-चेतना का पहला आधार है, किसानों की माली हालत। वे जिस भयावह आर्थिक दुरवस्था के शिकार हैं, उसके दबाव में लुटेरी सामंती प्रथाओं के खिलाफ खड़ा हो जाना आश्चर्यजनक नहीं है। मनोहर रुपये सेर के भाव घी देने से इंकार करता हुआ कहता है - "मेरे घर तो एक ही भैंस लगती है, उसका दूध बाल-बच्चों में उठ जाता है, घी होती ही नहीं। . . . मैं रुपये ले लूं तो मुझे बाजार से दस छटांक का मोल लेकर देना पड़ेगा। . . . यहां तो गांठ में कौड़ी भी नहीं है।"

संघर्ष-चेतना का दूसरा वस्तुगत आधार है, जमींदारों का चारित्रिक बदलाव। कादिर के यह कहने पर कि "यह कोई नई बात थोड़े ही है, बड़े सरकार थे तब भी तो एक-न-एक बेगार लगी ही रहती थी।", मनोहर जवाब देता है - "भैया तब की बातें जाने दो। तब साल-दो साल की देन बाकी पड़ जाती थी, मुदा मालिक कभी कुड़की-बेदखली नहीं करते थे। जब कोई काम-काज पड़ता था, तब हमको नेवता मिलता था। लड़कियों के ब्याह के लिए उनके यहाँ से लकड़ी, चारा और 25) बँधा हुआ था। यह सब जानते हो कि नहीं? जब वह अपने लड़कों की तरह पालते थे तो रैयत भी हंसी-खुशी उनकी बेगार करती थी। अब यह बातें तो गयीं, बस एक-न-एक पच्चड़ लगा ही रहता है।" जब जमींदारों ने किसानों के प्रति अपनी प्रथाएँ तोड़ दीं, तो किसान प्रथाओं का निर्वाह क्यों करें? मनोहर-जैसे किसानों के प्रतिरोध की एक अहम् वजह ये है।

संघर्ष-चेतना का तीसरा महत्वपूर्ण आधार है, राष्ट्रीय आंदोलन का प्रसार और इस सिलसिले में जेल-पुलिस-कचहरी इत्यादि के प्रति कम होता भय। मनोहर का बेटा बलराज बेगार में घी माँगने का प्रसंग आने पर कहता है - "जिसे बहुत घमंड हो, आकर देख ले। एक-एक का

सिर तोड़कर रख दें। यही न होगा कैद होकर चला जाऊंगा। इससे कौन डरता है? महात्मा गांधी भी तो कैद हो आए हैं।" इस वस्तुस्थिति ने किसानों की भीरुता को कम किया है। बलराज ही एक जगह और कहता है - ". . . मेरे पास जो पत्र आता है, उसमें लिखा है कि रूस देश में काश्तकारों का राज है, वह जो चाहते हैं करते हैं। उसी के पास कोई और देश बलगारी है। वहां अभी हाल की बात है, काश्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानों और मजूरों की पंचायत राज करती है।" इस तरह राष्ट्रीय से लेकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक की हलचलें किसानों को संघर्षशील होने की राह दिखला रही हैं।

उपर्युक्त वस्तुगत आधारों को देखते हुए प्रेमाश्रम के किसानों का साहस लेखक की मनोगत कल्पना नहीं प्रतीत होती। वह उनकी स्थिति का यथार्थवादी आकलन है। प्रेमाश्रम का मूल उर्दू मसौदे के लिखे जाने के बाद और हिंदी में प्रकाशित होने से पहले ही अवध का किसान आंदोलन फूट पड़ा था। प्रेमचंद बनारस के पास के जिन गाँवों की कहानी सुना रहे थे, अवध के फैजाबाद, रायबरेली इत्यादि जिले उनसे ज्यादा दूर न थे। इस किसान आंदोलन में किसानों ने अपनी संघर्ष-चेतना का जैसा अभूतपूर्व परिचय दिया, उसे देखते हुए प्रेमाश्रम के किसान संघर्ष में व्यक्त होने वाली युग-चेतना बिल्कुल सही प्रतीत होती है। वह युगीन यथार्थ की गहरी समझ का साक्ष्य है।

9.3.3 मध्य वर्ग

प्रेमाश्रम के पात्रों में से तीन शहरी मध्यवर्ग के प्रतिनिधि हैं - बैरिस्टर इर्फान अली, डॉक्टर प्रियनाथ चोपड़ा और ईजाद हुसैन। इन तीनों के अवसरवादी चरित्र का अंकन करते हुए प्रेमचंद ने शहरी मध्यवर्ग का एक खाका खींचा है। बैरिस्टर इर्फान अली अपने पेशे की लगातार बुराइयाँ करते हुए भी उस पेशे से होने वाली गलत-सही कमाई के गुलाम बने हुए हैं। वे हत्या के आरोप में फंसाए गए किसानों के मुकदमे की पैरवी करने का जिम्मा उठाते हैं, लेकिन रूपये का लोभ उन्हें अपनी जिम्मेदारी से विमुख कर देता है और किसानों को सजा हो जाती है। इसी तरह डॉक्टर प्रियनाथ चोपड़ा धन के लोभ में गलत डॉक्टरी रिपोर्ट देकर किसानों को फँसाने में सहायक बनते हैं। ईजाद हुसैन हिंदू-मुस्लिम कौमी एकता का व्यवसाय चलाने वाले जालसाज हैं, जो जनता का काम करने की आड़ में जीवन की सुविधाएँ बटोर रहे हैं। इन तीनों पात्रों के आरंभिक विकास को दिखलाने में प्रेमचंद ने यथार्थवादी पद्धति अपनायी है और राष्ट्रीय आंदोलन से लेकर किसान-संघर्षों तक के प्रति तत्कालीन अवसरवादी एवं सुविधाजीवी मध्यवर्ग का जो रवैया था, उसे इनके माध्यम से उजागर किया है। बाद में अपने आदर्शवादी रुझान के तहत उन्होंने तीनों का हृदय-परिवर्तन करा दिया है। डॉ. वीरभारत तलवार की टिप्पणी सही है कि "उपन्यास के फैलाव को समेटने और अपने आदर्श अंत की ओर तेजी से बढ़ने के सिलसिले में प्रेमचंद अपने मध्यवर्गीय चरित्रों को विस्तार से चित्रित नहीं करते। लेकिन उनकी वर्गीय प्रवृत्तियों के विश्वसनीय चित्र देते हैं। वे उन्हें अपने युग में उठते हुए आदर्शों के संपर्क में लाते हैं और फिर उन सबको हृदय-परिवर्तन की बाढ़ में बहाकर किसानों के पक्ष में ला खड़ा करते हैं।"

9.4 कथाकार का आदर्शवाद

स्थितियों और चरित्रों को उनकी तमाम विसंगतियों-अंतर्विरोधों के साथ चित्रित करने के बावजूद प्रेमाश्रमकार उन्हें किसी आदर्शवादी परिणति तक पहुंचा कर ही दम लेता है। कथा के बहुतेरे पात्रों का जिस तरह हृदय-परिवर्तन होता है और लखनपुर गाँव के किसानों की समस्याएँ जिस विधि से हल हो जाती हैं, उसे किसी भी सूरत में यथार्थवादी 'ट्रीटमेंट' का नमूना नहीं कहा जा सकता। इन्हीं दो पक्षों के विवेचन से कथाकार के आदर्शवादी रुझान को यहाँ स्पष्ट किया जा सकता है।

(क) पात्रों का हृदय-परिवर्तन : उपन्यास में ऐसे लगभग सभी पात्र, जो शोषण की मशीनरी के पुर्जे के तौर पर आए हैं, अंततः हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरते हैं। यह सही है कि प्रेमचंद ने ज्ञानशंकर जैसे मुख्य खल-चरित्र का हृदय-परिवर्तन नहीं दिखलाया है, लेकिन आत्महत्या के रूप में वह भी नैतिक दंड पाता है। उसके अलावा राय कमलानंद, पटवारी

मौजीलाल, बिसेसर शाह, सुक्खू चौधरी, डॉ. प्रियनाथ चोपड़ा, बैरिस्टर इर्फान अली, ईजाद हुसैन - इन सबका हृदय कथा के प्रवाह में किसी-न-किसी वजह से अपनी संकीर्णता छोड़कर विशाल होता जाता है। राय कमलानंद जमींदारी से विरक्त होकर साधु बन जाते हैं। पटवारी मौजीलाल अपने बेटे के निधन को ईश्वरीय दंड मानते हुए किसानों के पक्ष में गवाही देते हैं। बिसेसर साह और सुक्खू चौधरी शोषकों का साथ देना छोड़कर किसान-हितों के हामी हो जाते हैं। डॉ. प्रियनाथ चोपड़ा और बैरिस्टर इर्फान अली प्रेमशंकर के हृदय की विशालता देखकर अपनी करनी पर लज्जित होते हैं और अंततः प्रेमाश्रम की गतिविधियों में उनके सहकर्मी बन जाते हैं। ईजाद हुसैन भी कौमी एकता का ढोंग छोड़कर सच्ची समाज-सेवा में प्रेमशंकर के सहयोगी बन जाते हैं। इन सबके अलावा स्वयं प्रेमशंकर, ज्वाला सिंह, मायाशंकर-जैसे पात्र तो इस उपन्यास में हैं ही, जिन्हें अपने आदर्शों के पीछे बड़ी-बड़ी सुविधाओं का त्याग करते दिखलाया गया है।

हृदय-परिवर्तन और आदर्शों का जुनून हर जगह अस्वाभाविक नहीं लगता। प्रेमाश्रम जिस दौर की रचना है, उसमें भारतीय समाज एक गहरी उथल-पुथल से गुजर रहा था। अपनी सुविधाओं का त्याग कर देशव्रती बन जाने वाले लोगों की तब खासी तादाद हुआ करती थी। स्वयं प्रेमचंद ने फरवरी, 1921 में, अर्थात् प्रेमाश्रम का उर्दू मसौदा पूरा करने के आसपास असहयोग आंदोलन की लहर में अपनी 20 साल पुरानी सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया था। स्वाधीनता आंदोलन के इस आदर्शवादी जुनून को देखते हुए प्रेमाश्रम की पात्र-परिकल्पना का आदर्शवाद भी कई जगह युग-यथार्थ की ही अभिव्यक्ति प्रतीत हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन प्रेमचंद जिस तरह एक-के-बाद-एक सभी नकारात्मक चरित्रों को इस झोंक में बहा ले जाते हैं, वह स्वाभाविक नहीं लगता। अगर वास्तविक सामाजिक स्थितियाँ प्रेमचंद द्वारा परिकल्पित औपन्यासिक स्थितियों के अनुरूप होतीं, तो समाज के अंतर्विरोध चुटकियों में हल हो जाते और हम जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ। इसका मतलब यह कि आदर्शों की जो लहर तत्कालीन समाज में चल रही थी, उसे उपन्यासकार की कल्पना ने बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखा है और कल्पना के उसी रंग में रंगते हुए अपने कथानक एवं चरित्र-विकास को अस्वाभाविक बना दिया है।

(ख) किसानों की समस्याओं का समाधान : किसानों की दुरवस्था और शोषक तंत्र के प्रतिनिधियों के साथ उनके संबंधों के कठोर यथार्थवादी चित्र देने के बाद प्रेमचंद ने उस दुरवस्था का जो समाधान दिखलाया है, वह उनकी सदिच्छा के आरोपण से अधिक कुछ नहीं है। इस विषय पर पिछली इकाई में विचार किया जा चुका है। उसमें सिर्फ इतना और जोड़ने की जरूरत है कि तत्कालीन भारत की वास्तविकता इससे बहुत अलग थी। प्रेमाश्रम में प्रेमशंकर और मायाशंकर-जैसे विशाल-हृदय जमींदार उस समाधान को संभव करते हैं। जमींदारों के ऐसे त्याग से उनके जमींदारी इलाकों में रामराज्य के आ जाने की कोई गवाही उस दौर के भारत का इतिहास नहीं देता। अवध के किसान-आंदोलन के बीच जब-जब सुलह-वार्ता की कोशिशें हुईं, जमींदारों-ताल्लुकेदारों ने बेगार और नजराना लेने तक का अपना अधिकार छोड़ने से साफ मना किया। जमींदारों ने ही नहीं, कांग्रेसी नेतृत्व ने भी अपने भीतरघात से उस विराट आंदोलन की रीढ़ तोड़ देने में कोई कसर नहीं छोड़ी। अंततः एकमात्र उपलब्धि के रूप में बेदखली की दफा मंसूख करवाकर किसानों ने इस आंदोलन को स्थगित कर दिया। इस युग-यथार्थ के तहत प्रेमाश्रम की कथा के अंत को देखें, तो वह प्रेमचंद के आदर्शवाद का एक आदर्श उदाहरण प्रतीत होता है। कथा की यह आदर्शवादी परिणति किस प्रकार गांधी के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय आंदोलन की जरूरतों से मेल खाती थी, इसकी चर्चा हम पिछली इकाई में कर देख चुके हैं।

9.5 सारांश

प्रेमाश्रमकार ने अपने समय की सामाजिक वास्तविकताओं को कथात्मक रूप देने में चूक नहीं की है, लेकिन उस वास्तविकता की सीमाओं का ध्यान न रखते हुए उसने कथा को अपने आदर्शों के अनुरूप मनमानी परिणति तक पहुँचाया है। कथा के बहुलांश में प्रेमचंद एक यथार्थवादी कलाकार की तरह प्रकट होते हैं, किंतु उनका यथार्थवाद आदर्शोन्मुख है। उन्हीं

के शब्दों में कहें, तो प्रेमाश्रम में 'आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग' किया गया है। यह एक अलग बात है कि आज के पाठक-आलोचक के लिए प्राथमिकताएँ बदल गयी हैं। जिस यथार्थ-चित्रण को प्रेमचंद मात्र साधन की तरह इस्तेमाल करना चाहते थे, वह आज के पाठक-आलोचक के लिए प्राथमिक महत्व की वस्तु है और जो आदर्श-स्थापन उनका साध्य था, वह आज उनकी उपन्यास-कला का कमजोर पक्ष जान पड़ता है।

9.6 अभ्यास प्रश्न

1. 'प्रेमाश्रम में अपने युग के अंतर्विरोधों का यथार्थवादी चित्रण हुआ है, लेकिन कथानक एवं चरित्रों का विकास मुख्यतः आदर्शवाद की दिशा में है।' इस कथन पर विचार कीजिए।

2. प्रेमचंद की आदर्शोन्मुख यथार्थवाद-संबंधी धारणा को स्पष्ट करते हुए प्रेमाश्रम में उसका प्रतिफलन किस प्रकार हुआ है, इसकी चर्चा कीजिए।